भगवान् महावीर का जीवन-दर्शन

श्री नीरज जैन

सर्वान्तवत् तद्गुणमुख्यकल्पं,
सर्वान्तशून्यम् च मिथोऽनपेक्षम्।
सर्वापदामन्तकरं निरन्तम्
सर्वोदयं तीर्थमिदम् तवैव।

दो हजार वर्ष पूर्व आचार्य समन्तभद्र द्वारा रचे गये इस पद्य में भगवान महावीर के तीर्थ को "सर्वोदय तीर्थ" के रूप में व्याख्यापित किया गया है। सर्वोदय का अर्थ है—सबका उदय। सबका कल्याण। सर्वोदय की इसी लोक-कल्याणकारी भावना में भगवान महावीर का सम्पूर्ण जीवन-दर्शन समाया हुआ है। उन्होंने सत्य को, अहिंसा को, अस्तेय को, ब्रह्मचर्य को और अपरिग्रह को, इसी सर्वोदय तीर्थ की प्रतिष्ठा का साधन मानते हुए मानव समाज का दिग्दर्शन किया है।

महावीर का जीवन-दर्शन, जीवन की एक विधेय पद्धति है। यह मत करो, वह मत करो, यहां मत आओ, वहां मत जाओ, इसे मत देखो, उसे मत जानो, आदि आदि निषेध-परक अनुबन्धों में उनका जीवन-दर्शन नहीं बांधा जा सकता। महावीर हमें जीवन से पलायन करने की सीख नहीं देते। वे तो जीवन को विकास और उत्कर्ष के मार्ग पर अग्रेषित करके आत्मा को परमात्मा बनाने की कला हमें सिखाते हैं।

जीवन के उत्कर्ष की इस यात्रा में "आत्म बोध"—अपने आपको जान लेना—पहली और अनिवार्य शर्त है। स्वयं को जाने बिना आत्म-साधना का वह पथ हमारे समक्ष प्रशस्त ही नहीं होता जिस पर भगवान महावीर हमें चलाना चाहते हैं। इस आत्मबोध की दुर्लभता को एक मित्र ने दो पंक्तियों में बांधा है—

जमाने में उसने बड़ी बात कर ली,
खुद अपने से जिसने मुलाकात कर ली।

मन, वाणी और शरीर, यही तीन मुख्य उपकरण मनुष्य के पास होते हैं। हम यह भी कह सकते हैं कि मानव के समस्त क्रिया-कलापों का आधार यह मन, वचन, काय ही हैं। पुण्य हो या पाप, उपकार हो या अपकार, वासना हो या साधना, भोग हो या तप-त्याग, परहित हो या पर-पीड़न, भलाई हो या बुराई, इन सबकी सार्थकता या अनुचरण मन-वचन-काय के सहयोग के बिना संभव ही नहीं हो सकता। भगवान महावीर ने इन तीनों ही शक्तियों को परिष्कृत करके, मानव-जीवन को संवारने का संदेश दिया है। संक्षेप में यदि कहा जाए तो—आचरण में अहिंसा, वाणी में स्याद्वाद, विचारों में अनेकान्त, बस, यही है महावीर का जीवन सिद्धान्त।

अपने आचरण को ऐसा संयत और सुसंस्कृत बनाना जिससे दूसरों को शारीरिक या मानसिक, कैसी भी पीड़ा न पहुंचे, यह अहिंसा की मोटी परिभाषा है। महावीर ने जीव मात्र के लिए अहिंसा की उपादेयता को पग-पग पर समर्थन दिया है। अहिंसा सबसे पहले हमें दूसरे के अस्तित्व का बोध कराती है। सबकी सुविधा या असुविधा का आकलन कराती है। वह सबके जीवित रहने के अधिकार का उद्घोष करती है।

भगवान महावीर इस स्थूल हिंसा से छुड़ा कर हमें उस सूक्ष्म और मानसिक हिंसा से भी मुक्त कराना चाहते हैं जो हम अपने शरीर से नहीं, किन्तु मन से, निरन्तर करते रहते हैं। उन्होंने उसे "भाव हिंसा" का नाम दिया है। झूठ, चोरी, व्यभिचार और परिग्रह, ये सब इसी हिंसा के प्रकार-मात्र हैं। यही पांच पाप हैं और इनसे बचकर अपना जीवन निर्वाह करना ही आचरण की अहिंसा है। महावीर ने इस बात पर अधिक जोर दिया है कि हम शरीर की क्रिया के अलावा, मन से भी इन पापों के भागीदार न बनें, ऐसी सावधानी रखनी चाहिए। वे कहते हैं कि मन की इस चपलता के शिकार ऐसे असंख्य जीव हैं जिन्होंने दूसरे को कभी कोई पीड़ा नहीं पहुंचाई परन्तु उनका मन हिंसा का घोर अपराधी है। असंख्य ऐसे हैं जो कभी किसी का कुछ खींच तो नहीं पाये पर प्रतिपल चोर हैं। ऐसे लोगों की गिनती भी संभव नहीं जिन्होंने यद्यपि कभी किसी पर आंख तक नहीं उठाई पर उनके मन ने अनवरत व्यभिचार किया है। तृष्णा और लोभ के मारे ऐसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

व्यक्तियों की संख्या भी बहुत बड़ी है जिनके पास भले खाने-पहनने को भी न हो, पर जिनकी आशा-तृष्णा के लिए वह सृष्टि अपर्याप्त ही ठहरेगी। इस तरह हमारे जीवन को नित्य कलंकित करने वाले पापों की सूक्ष्म और मनोवैज्ञानिक व्याख्या तथा विश्लेषण करते हुए, उससे बचकर, अपने आचरण में अहिंसा की प्रतिष्ठा करने का उपदेश भगवान महावीर ने हमें दिया है।

महावीर का दूसरा सिद्धान्त है "वाणी में स्याद्वाद"। संसार की प्रत्येक वस्तु अपने में अनेक विशेषताएं धारण किये हुए है। ये गुण एक दूसरे के विरोधी होकर भी, वस्तु में एक साथ पाये जाते हैं। जैसे कोई व्यक्ति है, वह अपने पुत्र का पिता तो है, परन्तु साथ ही अपने पिता का पुत्र भी है। अपनी बहिन का भाई तो है परन्तु साथ ही अपनी पत्नी का पति भी है। अपने से छोटों की अपेक्षा बड़ा तो है पर साथ ही बड़ों के लिए छोटा भी है। एक छोटे नींबू की ओर देखें, वह पीला तो है पर साथ ही साथ खट्टा भी है। हल्का या भारी भी है। नरम या कड़ा भी है। गरम या ठण्डा और छोटा या बड़ा भी है। तमाशा ये है कि ये सारे गुण-धर्म, कल्पित नहीं, यथार्थ हैं। पृथक और भिन्न-भिन्न होते हुए भी इन वस्तुओं के संदर्भ में एकदम ठीक और एकसाथ पाये जाने वाले हैं। मुश्किल ये है कि इन सभी गुण-धर्म का एक साथ कहा जाना संभव नहीं है। क्रम से एक-एक करके ही, हमारी वाणी उनका बखान कर सकती है। इसका अर्थ हुआ कि हम जो कुछ भी कहते हैं कभी पूर्ण और निरपेक्ष सत्य नहीं हो सकता। वह तो आपेक्षिक और आंशिक सत्य ही होता है। सत्य के और भी दृष्टिकोण हो सकते हैं तथा यथार्थता अन्य कई प्रकारों से भी देखी और आंकी जा सकती है। जो हम कह पा रहे हैं वही अंतिम नहीं है। वस्तु के भीतर निहित ऐसे गौण संदर्भों की संभावना को स्वीकार करते हुए सत्य का निरूपण करने का प्रयास ही स्याद्वाद कहलाता है।

अपनी धारणा प्रकट करते समय, स्यात् या कथंचित शब्दों के प्रयोग द्वारा हम आपेक्षिक या आंशिक सत्य का उद्घाटन करते हुए भी उन अनगिनत अपेक्षाओं या दृष्टिकोणों की संभावनाएं स्वीकार लेते हैं जिनके द्वारा उस सत्य का कथन किया जा सकता है। जिन्हें वाणी एक साथ उजागर नहीं कर पाती ऐसे सारे आंशिक सत्यों को हम स्याद्वाद के सहारे स्वीकार कर सकते हैं। यथार्थ के सापेक्ष निरूपण की इसी पद्धति का नाम है—"वाणी का स्याद्वाद"।

महावीर के जीवन-सिद्धान्त की तीसरी कला है 'विचारों में अनेकान्त'। सत्य के संदर्भ में हम यह विश्लेषण कर चुके हैं कि संसार की प्रत्येक वस्तु, अनेक गुण-धर्मों वाली होती है। संसार के स्वरूप का, या अपनी आत्मा का, चिंतन करते समय, उसके पृथक-पृथक संदर्भों में, पृथक-पृथक दृष्टिकोणों से उसका मनन करना अनेकान्त है। यह अनेकान्त ही महावीर की विचार पद्धति की सबसे बड़ी विशेषता है।

जिस प्रकार शंकराचार्य ने अद्वैत दृष्टि के सहारे से और बुद्ध ने मध्यमा प्रतिपदा दृष्टि के सहारे से अपने दर्शन की व्याख्या की है, उसी प्रकार महावीर ने अपने विचारों के निरूपण के लिए अनेकान्त को आधार बनाया है। सभी महापुरुषों ने अपने जीवन में सत्य की शोध करके, अपनी वाणी में उसकी व्याख्या करने का प्रयास किया है। भगवान महावीर की इसी सत्य-शोधक-साधना का नाम अनेकान्तवाद है। अनेकान्त का अंकुर सिर्फ सत्य की भूमि में उग सकता है। पूर्णता और यथार्थता की नींव पर ही अनेकान्त का मन्दिर बनता है।

पूर्ण और यथार्थ सत्य का दर्शन बहुत दुर्लभ है। उसे जान ही लिया जाय तो भी, उसका कथन असंभव-सा है। कथन के प्रयास यदि किये भी जाएं तो देश-काल की परिस्थितियों के कारण, भाषा और बोलियों की सीमा और विविधता के कारण, वक्ता और श्रोता की तात्कालिक मनःस्थिति के कारण ऐसे कथन में भेद और विरोध उत्पन्न हो जाना अनिवार्य है। जिन्होंने सत्य को आंशिक ही जाना है उनके सामने तो और भी कठिनाइयां हैं। सत्य के निरूपण में आने वाली इन्हीं कठिनाइयों ने भिन्न-भिन्न मत-मतान्तरों, सम्प्रदायों और मान्यताओं को जन्म दिया है, जो एक दूसरे से टकराकर मानव समाज में अशान्ति और विद्वेष का वातावरण उत्पन्न करते हैं।

भगवान महावीर ने बहुत गहरे मनन के उपरान्त उस अनेकान्त विचार-पद्धति का आविष्कार किया जिससे सत्य को आंशिक या अपूर्ण रूप में जानने वालों के साथ पूरी तरह न्याय हो सके। इस अनेकान्त के सहारे ही यह संभव था कि अपूर्ण और अपने से विरोधी होकर भी दूसरे की बात में यदि सत्य है, तथा अपूर्ण और दूसरे से विरोधी होकर भी यदि अपनी बात में सत्य है तो इन दोनों का समन्वय करके पूर्ण और यथार्थ को ग्रहण किया जा सके। अनेकान्त की इस विचारधारा में अपूर्ण रूप से विचारित होकर भी पूर्णता गर्भित होती है। किसी एक दृष्टिकोण के विचार पथ में आते ही, अन्य समस्त संभावित दृष्टिकोण, नैपथ्य में स्वतः उपस्थित हो जाते हैं। इस प्रकार हमारे सीमित ज्ञान को भी सत्य और यथार्थ का ग्रहण करने की क्षमता प्रदान करता है—विचारों का अनेकान्त।

भगवान महावीर के इस जीवन सूत्र के अनुसार जिस व्यक्ति का आचरण अहिंसा से पावन और पवित्र हो गया है, जिसकी वाणी स्याद्वाद के प्रयोग से निर्वैर और प्रामाणिक हो गई है और जिसकी विचारधारा अनेकान्त की लहरों से निर्मल बन गई है, ऐसा ही साधक आत्मबोध का अधिकारी बनकर अपनी आत्मा को परमात्मा के रूप में प्रकट करके जन्म, जरा और मृत्यु के चक्रव्यूह से बाहर निकलने में सफल हो सकता है। वही आत्म-उपलब्धि है। वही मुक्ति है।

जहां अहिंसा से आचरण-संहिता बंधी हुई है,
स्याद्वाद से वाणी की मंजुलता सधी हुई है।
अनेकान्त का इन्द्रधनुष चिन्तन ने जहां छुआ है,
महावीर का जीवन दर्शन सार्थक वहीं हुआ है॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org